Chapter. 8

अध्याय-८

' रघुवंश दीपक ' में व्यंजित भक्ति का स्वरूप तथा दार्शनिक विचार

अध्याय -८

: रघुवंश दीपक में व्यंजित भक्ति का स्वरूप तथा दार्शनिक सिद्धान्त :

पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम यह लक्ष्य कर चुके हैं कि यद्यपि रघुवंश दीपक की रचना में कवि सब्जराम जी ने 'राम चरित मानस' तथा उसके रचयिता महाकवि तुलसीदास जी से ही प्रेरणा ग्रहण की है तथापि अपनी स्वतंत्र काव्य चेतना तथा सार ग्राहिणी प्रतिमा एवं व्यापक अनुभवों के आधार पर वे अपनी रचना को मौलिकता प्रदान कर सके थे। इसी प्रकार भक्ति विषयक अवधारणाओं में भी यद्यपि वे महाकवि तुलसीदास जी की भक्ति पद्धति से ही प्रभावित थे किन्तु वैयक्तिक उपासना तथा भक्ति के साधनात्मक पक्ष पर उन्होंने अपने स्वतंत्र चिन्तन तथा रुचि के आधार पर जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है वह महाकवि तुलसीदास जी की भक्ति पद्धति से भिन्न है। सब्जराम जी की वैयक्तिक उपासना का रूप रसिक - भावना की भक्ति-पद्धति से प्रभावित था और वे रसिक भावना के साधक राम भक्त थे जिस पर समकालीन रसिक भक्तों का प्रभाव कहा जा सकता है। अयोध्या रसिक भावना की राम भक्ति का मुख्य केन्द्र था और वहां पर स्थापित विभिन्न अखाड़े इसके प्रेरक तथा संचालक थे। ' सीतायन ' के रचयिता श्रीराम प्रियाशरण जी जो ' प्रेमकली ' के उपनाम से प्रसिद्ध थे सब्जराम जी के समकालीन थे। इसी प्रकार जानकी रसिक शरण जी जिन्होंने 'अवध सागर' (अवधी सागर) जैसे महाकाव्य की रचना की थी रसिक भावना के राम भक्त कवि थे। ' अवध सागर ' का रचना काल संवत् १७६० विक्रमी है। इसी प्रकार बालकृष्ण ' बाल अली ' १ तथा महाराजा छत्रसाल जो रसिक भावना के राम भक्त कवि थे सब्जराम जी के समकालीन थे। अस्तु अयोध्या में एक लम्बे समय तक निवास करने तथा इस धारा के समकालीन

१- बालकृष्ण ' बाल अली ' संवत् १७४६ के आस पास उपस्थित थे ।

२- महाराज छत्रसाल का जन्म काल संवत् १७०६ है ।

कवियों के सम्पर्क में रहने के कारण कवि सहज राम जी की वैयक्तिक उपासना रसिक भावना की राम भक्ति थी, साथ ही गोस्वामी तुलसीदासजी के अनुयायी होने के कारण वे मर्यादावादी भी थे। माधुर्य चित्रण में भी रामचरित की मर्यादा को अक्षुण्ण रखने का ध्यान उन्होंने बराबर रखा है। राम- सीता की विहार-लीला तथा उनके श्रृंगारादि के माधुर्य भाव से युक्त प्रसंगों की रचना करके भी सहजराम जी ने उनमें अश्लीलता तथा चारित्रिक गिरावट अथवा कामुकता का प्रवेश नहीं होने दिया। रसिक भक्तों की सखी भाव से श्री राम -सीता की उपासना को सहजराम जी ने 'सहजा सखी' के रूप में अपने आपको प्रस्तुत कर स्वीकार किया था अतः वे तत्सुख के अधिकारी बन सके थे। रसिक भक्तों ने जिसप्रकार सखी भाव की उपासना करते हुये सीतात्व की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत कर राम के एक पत्नीव्रत के सिद्धान्त तथा उनके पारिवारिक,सामाजिक मर्यादा के पालन एवं लोक रक्षण के आदर्श को सुरक्षित रखा है,सहजराम जी ने उसी प्रकार उसकी पूर्ण रक्षा की है। कवि की 'रसिक भावना' की भक्ति पद्धति का परिचय हम इसी अध्याय के परवर्ती पृष्ठों में यथा प्रसंग प्रस्तुत करेंगे। अस्तु यहाँ केवल इतना ही संकेत कर देना पर्याप्त होगा कि रघुवंश दीपक का कवि वैयक्तिक उपासना के क्षेत्र में 'रसिक भावना' की राम भक्ति का उपासक था।

उपर्युक्त पंक्तियों मेंसहज राम जी की वैयक्तिक उपासना से संबंधित जो संकेत प्रस्तुत किये गये हैं उन्हें दृष्टि पथ में रखकर हम सम्पूर्ण रघुवंश दीपक में व्यंजित भक्ति के स्वरूप को देखने से पूर्व भक्ति विषयक विभिन्न परिभाषाओं तथा भक्ति रस के विभिन्न ग्रन्थों तथा प्रमुख आचार्यों की एतद्विषयक मान्यताओं का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर हम उसी सन्दर्भ में गोस्वामी तुलसी दास जी की भक्ति पद्धति का भी संक्षिप्त

परिचय प्रस्तुत कर उसके आलोक में 'रघुवंश दीपक' में व्यंजित भक्ति भावना का अनुशीलन करने का प्रयास करेंगे ।

भक्ति की परिभाषा

१- महर्षि शाण्डिल्य के अनुसार परमेश्वर में परम अनुरक्ति ही भक्ति है। १ ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम की ओर संकेत करते हुए उन्होंने आत्मरति के अविरोधी आत्मम्बन में परम अनुराग होने को भक्ति की संज्ञा दी है । २

२- देवर्षि नारद ने 'सा त्वस्मिन परम प्रेम रूपा ३ कह कर भक्ति की परिभाषा की है। अर्थात् ईश्वर में परम प्रेम का होना ही भक्ति है। अनन्य भावना से अन्य सभी आश्रयों का त्याग कर भगवान के प्रति परम अनुरक्ति को ही नारद जी ने भक्ति कहा है। भगवद्विषयक परम प्रेम की उच्चतम् भूमिका के लिये अन्य किसी भी प्रकार की आसक्ति को अनन्यता का बाधक कहते हुये देवर्षि नारद ने कहा है -अन्याश्रयाणा त्यागो अनन्यता । ४

३- भक्ति शास्त्र के अनुपम ग्रन्थ श्रीमद्भागवत में भक्ति की परिभाषा इस प्रकार की गई है, 'अहेतुक्या व्यवहिता या भक्ति पुरुषोत्तमे' ५ अर्थात् भगवान में हेतु रहित निष्काम भाव से एकनिष्ठ अनवरत प्रेम होना ही भक्ति है। इसी ओर अधिक स्पष्ट करते हुये श्रीमद् भागवतकार ने कहा है कि मन वाणी तथा शरीर की सभी वृत्तियों से सम्पूर्ण प्राणियों में निरन्तर भगवान को ही देखना अथवा उसके भाव को ग्रहण करना ही भक्ति है । ६

१- शाण्डिल्य सूत्र ।।२।। 'परानुरक्तिरीश्वरे'
२- नारद सूत्र ।।१२।। 'आत्मरत्याविरोधेति शाण्डिल्यः'
३- नारद सूत्र ।।२ ।।
४- नारद सूत्र ।।१० ।।
५- श्रीमद् भागवत ३।२६।१२
६- श्रीमद्भागवत ११।२६।१७

४- गीता के अनुसार मन को एकाग्र कर नित्य निरन्तर श्रद्धा प्रेम सहित परमात्मा का अर्चन, वन्दन एवं प्रपन्न भाव से आत्मा को उसी में एकीभाव करना भक्ति है। १

भक्ति की परिभाषा से सबंधित जिन मतों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है उनमें ईश्वर के प्रति परम अनुराग, अनन्यता तथा समर्पण, निष्कामता, विषयों कात्याग तथा भगवान को ही अखिल विश्व में व्याप्त विराट पुरुष एवं परम सत्ता के रूप में देखकर उसकी अर्चना व वन्दना करना आवश्यक माना गया है ।

५- भक्ति विषयक जो विचार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने, गोस्वामी तुलसीदास जी की भक्ति पद्धति के परिचय के रूप में प्रस्तुत किये हैं वे उसके व्यवहारिक तथा सैद्धान्तिक पक्षों से पूर्णत: समन्वित तथा विराट चेतना को लिये हुये दिखाई देते हैं । आचार्य शुक्ल ने 'धर्म की रसात्मक अनुभूति को भक्ति कहा है[2] और 'धर्म ब्रह्म ' के सत्स्वरूप की व्यक्तप्रवृत्ति है जिसकी असीमता का आभास अखिल विश्व स्थिति में मिलता है। ३ इस प्रकार ब्रह्म के सत्स्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति की रसात्मक अनुभूति को ही हम दूसरे शब्दों में भक्ति कह सकते हैं । आचार्य शुक्ल ने इसे और अधिक स्पष्ट करते हुये कहा है कि ' इस प्रवृत्ति का साक्षात्कार परिवार और समाज जैसे छोटे क्षेत्रों से लेकर समस्त भू मण्डल और अखिल विश्व तकके बीच किया जा सकता है। परिवार और समाज की रक्षा में, लोक के परिपालन में और समष्टि रूप में, अखिल विश्व की शाश्वत स्थिति में सत् की इसी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।४ भक्ति में अखिल विश्व के बीच सत् की इसी प्रवृत्ति के साक्षात्कार किये जाते हैं। भक्त के भीतर का चित जब बाहर सत् का साक्षात्कार करता है तब आनन्द का आविर्भाव होता है। इस साधना द्वारा वह भगवान का सामीप्य लाभ करता चला जाता है। ५ आचार्य शुक्ल की दृष्टि

१- गीता अध्याय १८ श्लोक ६५
' मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यासि सत्यते, प्रति जाने प्रियो समे ।।

२- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - गोस्वामी तुलसीदास परिशिष्ट -सप्तम संस्करण शीर्षक - मानस की धर्म भूमि - पृष्ठ १७६

३- वही - पृष्ठ वही

४- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - गोस्वामी तुलसीदास-सप्तम संस्करण परिशिष्ट शीर्षक मानस की धर्म भूमि पृष्ठ १७६

५- वही - पृष्ठ वही

में धर्म-साधना की यही रसात्मक अनुभूति भक्ति है। धर्म अर्थात् ब्रह्म के सत्स्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति की ऊंची नीची कई भूमियों का उल्लेख करते हुये उन्होंने गृह धर्म, कुल धर्म, समाज धर्म, लोक धर्म और विश्व धर्म या पूर्ण धर्म को इस साधना का व्यापक क्षेत्र माना है। १ उनके अनुसार 'धर्म का प्रकाश अर्थात् ब्रह्म के सत्स्वरूप का विकास इसी नाम रूपात्मक व्यक्त जगत के बीच होता है। भगवान की इस स्थिति विधायिनी व्यक्त कला में हृदय न रमा कर, बाह्य जगत के नाना कर्म क्षेत्रों के बीच धर्म की दिव्य ज्योति के स्फुरण का दर्शन न करके जो आंख मूंद अपने अन्त:करण के किसी कोने में ईश्वर को ढूंढा करते हैं'२ वे न तो भक्त हैं और न उनकी यह साधना भक्ति कही जा सकती है।

वस्तुत: आचार्य शुक्ल की इस व्यापक परिभाषा में भक्ति के व्यवहारिक तथा सैद्धान्तिक दोनों ही पक्ष पूर्णत: समन्वित दिखाई देते हैं। समग्रत: ,उपर्युक्त विवेचन के आलोक में भक्ति को व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि की मंगल साधना तथा लोक हित एवं धर्म पालन की विराट चेतना से सम्पृक्त एक महती जीवन साधना मानना अधिक उचित प्रतीत होता है। इसप्रकार भक्ति की उपर्युक्त परिभाषा तथा व्यापक दृष्टिकोण को दृष्टि पथ में रखकर हम अपने आलोच्य कवि सहजराम जी की एतद्विषयक अवधारणाओं को लक्ष्य करने का प्रयास करेंगे। साथ ही, जैसा कि हम प्रारम्भ में ही कह चुके हैं कि भक्ति की मूल चेतना में सहजराम जी गोस्वामी तुलसीदास जी से प्रभावित थे, यह आवश्यक प्रतीत होता है कि आलोच्य कवि पर पूर्णत: विचार करने से पूर्व उसके प्रेरक के तद्विषयक विचारों तथा साधना पद्धति को भी संक्षिप्त रूप से देखा जाए। यहाँ इस तथ्य का उल्लेख भी आवश्यक प्रतीत होता है कि भक्ति शास्त्रों में भक्ति के भेद, रूप तथा साधनात्मक पक्ष पर विस्तार से विचार किया गया है और आचार्यों ने उसके भेदादि को लेकर बड़ा मतभेद भी प्रकट किया है अस्तु यहाँ हम उसके विस्तार में न जाकर,आलोच्य कृति में व्यंजित होने वाले भक्ति के उन रूपों, भेदों को मूल विवेचन के अन्तर्गत ही लक्ष्य करने का प्रयास करेंगे।

१- वही पृष्ठ - वही
२- वही पृष्ठ -१७८

: गोस्वामी तुलसीदास जी की भक्ति पद्धति का संक्षिप्त परिचय :

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भक्ति को उस सुन्दर चिन्तामणि के रूप में स्वीकार किया है जो बिना किसी दीपक,घृत तथा बाती के ही निरंतर अहर्निश परम ज्योतिमान होकर प्रकाश की किरणें विकीर्ण करती रहती है। इस प्रकाश के समीप न तो मोह रूपी दारिद्र जा पाता है और न लोभ रूपी वायु में उसे बुझाने की शक्ति है। इसके प्रकाश से अविद्या का प्रबल अंधकार नष्ट हो जाता है औरकामादि दुष्ट शलभ उसके निकट नहीं जाते । जिसके हृदय में यह परम ज्योतिमान चिन्तामणि निवास करती है उसे इन मानस रोगों से सहज में ही मुक्ति मिल जाती है जिनसे संसार के सभी प्राणी ग्रस्त रहा करते हैं । इस प्रकार की राम भक्ति जिसके हृदय में निवास करती है - उसे स्वप्न में भी किसी भी प्रकार का दुख स्पर्श तक नहीं कर पाता । भक्ति रूपी चिन्तामणि के प्राप्त करने का उपाय भी अत्यंत सरल है। तुलसीदास जी इस सरल उपाय की ओर संकेत करते हुये कहते हैं कि -

सुगम उपाय पाइवे केरे । नर हत भाग्य देहिं भट भेरे ।।
पावन पर्वत वेद पुराना। रामकथा रुचिराकर नाना।।
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ज्ञान विराग नयन उरगारी ।।
भाव सहित जो खोजइ प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी ।।१

तुलसी की भक्ति स्वयं साध्य है जबकि ज्ञान का साध्य कैवल्य परम पद की प्राप्ति है। हरि भक्ति के प्राप्त होते ही मोक्ष सुख अनायास ही प्राप्त हो जाता है ।इसीलिए चतुर हरि भक्त मोक्ष की कामना न करते हुए भक्ति की ही कामना करते हैं । २ तुलसी की भक्ति,ज्ञान, वैराग्य से

१- रामचरितमानस -उत्तरकाण्ड -दोहा ११६ के बाद से दोहा १२० के बीच की चौपाइयाँ । कहेउ ज्ञान सिद्धांत बुझाई।सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई--
२- वही- दोहा ११८ से ११६ के मध्य की चौपाईयाँ- अति दुर्लभ कैवल्य----

संयुत, श्रवणादिक से पोषित अनन्य भावना से युक्त सेवक-सेव्य भाव की थी। जिसके प्राप्त होते ही मुनि दुर्लभ गति अनायास ही मिल जाती है। श्रद्धा से संवलित निष्काम प्रेम ही तुलसी की वह अनपायिनी भक्ति है जो भगवत्कृपा से ही निर्मल मन तथा संत स्वभाव वाला अनन्य भक्त सहज में ही प्राप्त कर लेता है। स्वं तो भावेन प्रभु श्रीराम के चरणों में समर्पित होने वाला पातकी भी उनकी अहैतुकी कृपा तथा असीम दया का अधिकारी बन जाता है। १ चराचर द्रोही होने पर भी जो नर प्रपन्न भाव से मद, मोह तथा विभिन्न प्रकार के कपट छल आदि त्याग कर प्रभु श्रीराम की शरण में पहुंच जाता है, वह उनकी अनन्य भक्ति का अधिकारी बनकर अत्यन्त प्रिय हो जाता है। २ गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा प्रतिपादित भक्ति सिद्धान्त पर अपने विचार प्रकट करते हुए तुलसी दर्शन के अधिकारी विद्वान डॉ० बल्देव प्रसाद मिश्र ने ठीक कहा है कि ' इनकी दृष्टि में भक्ति ही सब साधनों का फल है। उसके बिना सब साधन शून्य हैं। इसलिए भगवद्-विमुख लोग नितान्त सोचनीय हैं और भगवद्भक्त ही धन्य है। इसीलिए उन्होंने स्थान स्थान पर ' भक्ति करो, भक्ति करो ' इस प्रकार का स्पष्ट आदेश दिया और दिलाया है। ३ गोस्वामी तुलसीदास जी ने भक्ति पद्धति के अन्तर्गत शील और सदाचार एक आवश्यक अंग के रूप में स्वीकार किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी की इस भक्ति पद्धति पर विचार करते हुए कहा है कि ' शील के असामान्य उत्कर्ष को प्रेम और भक्ति का आलम्बन स्थिर कर उन्होंने सदाचार और भक्ति को अन्योन्याश्रित करके दिखा दिया। ४

१- मानस सुन्दरकाण्ड दोहा ४३ के बाद की चौपाइयां -

कोटि विप्र बध लागहिं जाहू। आए शरन तजि नहिं ताहू ।।
सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्मकोटि अघ नासहिं तबहीं ।।

२- मानस सुन्दरकाण्ड दोहा ४७ के बाद की चौपाइयां -

जो नर होइ चराचर द्रोही। आवैसभय सरनतकि मोही।
तजि मदमोह कपट छल नाना। करहुं सद्य तेहि साधु समाना।।

३- मानस मन्थन-डा० बल्देव प्रसाद मिश्र पृष्ठ २२-२३

४- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- गोस्वामी तुलसीदास सप्तम संस्करण पृष्ठ ५२

आचार्य शुक्ल ने इस पर आगे विचार करते हुये पुन: कहा है कि भगवान का जो प्रतीक तुलसीदास जी ने लोक के सम्मुख रखा है ,भक्ति का जो प्राकृत आलम्बन उन्होंने खड़ा किया है उसमें सौन्दर्य ,शक्ति और शील तीनों विभूतियों की पराकाष्ठा है। सगुणोपासना के ये तीन सोपान हैं जिनपर हृदय क्रमश: टिकता हुआ उच्चता की ओर बढ़ता है।१ अन्त:करण की पवित्रता तथा शुद्ध आचार के लिये गोस्वामी तुलसीदास जी भक्ति को अनिवार्य मानते हैं। उनके मतानुसार केवल ज्ञान द्वारा वह दृढ़ता नहीं आती जो भक्ति द्वारा प्राप्त होती है।२ उन्होंने शील आदि गुणों को भी भक्ति के बिना नीरस तथा निराधार माना है।३ भक्ति की आनन्दमयी प्रेरणा से शील की ऊंची से ऊंची अवस्था की प्राप्ति आप से आप हो जाती है और मनुष्य संत पद को पहुंच जाता है। ४ अन्त में गोस्वामी तुलसीदास जी की भक्ति पद्धति पर उन्हीं के द्वारा उद्घोषित सिद्धान्त की ओर लक्ष्य करके हम उसपर विचार करेंगे। तुलसीदास जी की स्पष्ट घोषणा है कि -

' वारि मथे घृत होय,सिकता ते बरु तेल ।
विनु हरि भजन न भव तरिय,यह सिद्धान्त अपेल।।५
सेवक सेव्य भाव विनु,भव न तरिय उरगारि ।
भजहु राम पद पंकज,अस सिद्धांत विचारि ।।६

साधक सिद्ध विमुक्त उदासी । कवि कोविद कृतज्ञ सन्यासी ।।
जोगी सूर सुतापस ज्ञानी। धर्म निरत पंडित विज्ञानी ।।
तरहिं न विनु सेये मम स्वामी। राम नमामि,नमामि नमामी।।

इसी प्रकार भक्ति को ही परम साध्य मानकर उसकी सर्व श्रेष्ठता की घोषणा

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,गोस्वामी तुलसीदास सप्तम संस्करण पृष्ठ ५३,५४

२- गीतावली - { नयन मलिन पर नारि निरखि,
मन मलिन विषय संग लागे ------

३- वही - राम चरन अनुराग नीर विनु,मल अति नास न -पावै

कीरति कुल करतूति भूति भलि,सील सरूप सलोने ।
तुलसी प्रभु अनुराग, रहित जस सालन साग अलोने ।।

४- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-गोस्वामी तुलसीदास -सप्तम संस्करण पृष्ठ ६२

५. रामचरित मानस · उत्तरकाण्ड दोहा-१२२(क)
६. रामचरित मानस · उत्तर काण्ड दोहा-११९(क)

भी गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस प्रकार की है। समस्त साधनों का एकमात्र फल भक्ति ही किस प्रकार है इसे निम्नांकित चौपाइयों में देखा जा सकता है-

तीर्थ अटन साधन समुदाई। योग विराग ज्ञान निपुणाई।।
नाना कर्म धर्म व्रत दाना। संयम नियम यज्ञ जप नाना।।
भूत दया निज गुरु सेवकाई। विद्या विनय विवेक बड़ाई ।।
जहं लगि साधन वेद बखानी। सब कर फल हरि भक्ति भवानी।।
मुनि दुर्लभ हरि भक्ति नर, पावहिं बिनहिं प्रयास ।।
जे यह कथा निरन्तर, सुनहिं मान विश्वास ।। १

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भक्ति के माध्यम से ही संसार की हर वस्तु की श्रेष्ठता की परीक्षा की है। उनकी दृष्टि में वही इस संसार में सर्वज्ञ, गुणी, ज्ञानी, महिमा मण्डित, पंडित तथा दानी है तथा वही धर्म परायण, कुल कारक है जिसका मन प्रभु श्री राम के चरणों में निरन्तर लगा रहता है। इसी प्रकार वही नीति निपुण, परम चतुर, श्रुति सिद्धान्तों को जानने वाला विद्वान मानव उनकी दृष्टि में है तथा वही कवि, कोविद तथा धीर मनुष्य है जो छल विहीन होकर निष्कपट भाव से प्रभु श्री राम का भजन करता है२

भक्ति के साधनों का उल्लेख करते हुये महाकवि तुलसीदास जी ने 'श्रुति सम्मत' उन सभी मार्गों को ग्रहण करने का सुझाव दिया है जिससे प्रभु के चरणों में अविरल प्रेम उत्पन्न हो। सत्संग को उन्होंने इसी लिये अत्यन्त सरल किन्तु सर्वोच्च साधन के रूप में स्वीकार किया है। उनका कथन है कि भगवान की भक्ति संतों की कृपा से अत्यन्त सरलता पूर्वक प्राप्त की जा सकती है। ३ वे स्पष्ट कहते हैं कि -

अस विचारि जो कर सतसंगा। राम भक्ति तेहि सुलभ बिहंगा।।
ब्रह्म पयोनिधि मंदर, ज्ञान संत सुर आहि।
कथा सुधा मथि काढ़हि, भक्ति मधुरता जाहि।।४

१- मानस उत्तर काण्ड दोहा १२६ तथा उससे पूर्व की चौपाइयां ।
२- वही - उत्तरकाण्ड दोहा १२६ के बाद की चौपाइयां -
'सोई सर्वज्ञ गुणी सोइ ज्ञाता----जो छल छाड़ि भजै रघुबीरा।
३- भक्ति तात अनुपम सुख मूला। मिलहिं जो संत होहिं अनुकूला। मानस
४- मानस उत्तरकाण्ड दोहा १२०

विरति चर्म असि ज्ञान मद, लोभ मोह रिपु मारि ।
जय पाइय सो हरि भगति ,देखु खगेश विचारि ।।[1]

गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने भक्ति पथ का परिचय देते हुये स्पष्ट घोषणा की थी कि उनका भक्ति मार्ग " श्रुति सम्मत हरि भक्त पथ संयुत विरति विवेक " था। श्रुति सम्मत तथा विरति प्रधान एवं विवेक सयुंत होने के कारण इस भक्ति में वैयक्तिक साधना के साथ साथ लोक हित की साधना को भी विपुल अवकाश प्राप्त होता है। इस मार्ग पर चलकर मानव लोक धर्म का पालन करता हुआ जीवन के परम लक्ष्य को सहज में ही प्राप्त कर अनन्त सुख, परम शान्ति तथा अखण्ड आनन्द की उपलब्धि कर लेता है, जीवन्मुक्त हो जाता है। शुद्धाचरण,निर्मल हृदय वाला भक्त साधु स्वभाव ~~नवनीत-अरविंद~~ हो होकर लोभ, मोह,काम क्रोध, ईर्ष्या, दम्भ पाखण्ड आदि दुर्वृत्तियों पर विजय प्राप्त करता हुआ घृणा, द्वेष अहंकारादि से मुक्त होकर निर्वैर हो जाता है। उसकी दृष्टि सियाराम-मय हो जाती है -अत: प्राणिमात्र के प्रति प्रेम सद्भावना का स्वाभाविक स्त्रोत अपने आप ही उसके हृदय में फूट पड़ता है और वह विश्व बन्धुत्व एवम् मानव कल्याण के उदात्त गुणों से पूर्ण हो आप्तकाम हो जाता है ।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम के प्रति अनन्य प्रेम भक्ति को मीन का जल से तथा चातक का स्वाति बूंद से अनन्य प्रेम दिखलाकर अपनी भक्ति विषयक उच्च भाव भूमि को प्रकट किया है। प्रेम की अनन्यता दृढ़ता तथा नैरन्तर्य को साकार रूप देकर उसकी अमरता की ओर संकेत करते हुये उन्होने चातक और मीन को ही आदर्श प्रेमी के रूप में स्वीकार

१- मानस उत्तरकाण्ड दोहा - १००

किया है। इसी प्रकार उन्होंने कामी को जिस प्रकार नारी प्रिय होती है, लोभी को जिस प्रकार अर्थ से प्रेम होता है, उसी प्रकार श्री राम को अपना परम प्रिय मानकर अपनी भक्ति के आदर्श रूप का परिचय दिया है। इस अनन्य भक्ति के सम्पादन के लिये उन्होंने भक्त में श्रद्धा और विश्वास को परमावश्यक तत्व माना है। अनपायिनी भक्ति की उपलब्धि ही तुलसीदास जी की साधना का अंतिम साध्य था जो सर्वतोभावेन स्वार्थ रहित तो था ही साथ ही परमार्थ सिद्धि मोक्षादि की कामना से भी शून्य थी ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि गोस्वामी तुलसी दास जी की भक्ति पद्धति श्रुति सम्मत, ज्ञान वैराग्य से युक्त, अनन्य प्रेम से सम्बलित थी जिसमें भक्ति का चरम साध्य अनपायिनी भक्ति की उपलब्धि को ही स्वीकार किया गया है।

: रघुवंश दीपक में व्यंजित भक्ति भावना :

पूर्ववर्ती पृष्ठों में भक्ति की परिभाषा, भेद तथा साधनादि विभिन्न पक्षों पर विचार किया जा चुका है। साथ ही हिन्दी रामकाव्य धारा के राम भक्त कवि गोस्वामी तुलसीदास जी की भक्ति पद्धति तथा स्तद्विषयक उनकी अवधारणाओं का भी संक्षिप्त उल्लेख किया जा चुका है। अनुशीलन के इसी क्रम में 'रघुवंश दीपक' में व्यंजित सहजराम जी की भक्ति भावना का परिचय भी प्राप्त करना अभीष्ट होगा। हमने इस तथ्य को पहले ही लक्ष्य कर लिया है कि भक्ति विषयक विचारों तथा अवधारणाओं में हमारा चर्चित कवि यद्यपि गोस्वामी तुलसीदास जी का ही अनुयायी था किन्तु उसकी वैयक्तिक उपासना का रूप अवश्य ही उससे भिन्न था। रामचरित मानस में भक्ति का आलम्बन, नर लीला करने के लिये अवतरित होने वाले वे श्रीराम हैं जो परात्पर ब्रह्म के सगुण रूप ही हैं। उनमें असीम शक्ति, अनन्त शील तथा अनुपम सौन्दर्य से युक्त भक्त को आकर्षित, संतुष्ट तथा पूर्ण आनन्द प्रदान करने की अद्भुत क्षमता थी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में यदि यह कहा जाये कि 'भगवान का जो प्रतीक तुलसीदास जी ने लोक के सम्मुख रखा है भक्ति का जो प्राकृत आलम्बन इन्होंने खड़ा किया है, उसमें सौन्दर्य, शक्ति और शील तीनों विभूतियों की पराकाष्ठा है'[१] तो अधिक उपयुक्त होगा। तुलसीदास जी के इसी प्राकृत आलम्बन को सहजरामजी ने स्वीकार कर उसकी असीम शक्ति, अनन्त शील तथा अनुपम सौन्दर्य के प्रति असीम श्रद्धा एवं अनन्य प्रेम की भावना प्रकट की है। सामान्य अनुराग, समादर

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - गोस्वामी तुलसीदास - सप्तम संस्करण पृष्ठ ५३

तथा श्रद्धा से आगे बढ़कर इसी आलम्बन के प्रति अपार निष्ठा एवं अविचल विश्वास को धारण कर उनकी जीवन साधना एक महान् भक्त के रूप में प्रतिबिम्बित हुई ।

' रघुवंश दीपक ' में सहजराम जी की भक्ति भावना के दो रूप स्पष्टत: दिखाई देते हैं -

१- सेवक सेव्य भावना ।

२- माधुर्य भावना या रसिक भावना।

प्रथम प्रकार की भावना ~~के प्रतीक पात्र~~ भरत, हनुमान, लक्ष्मण, सुग्रीव ,विभीषण, अंगद, शत्रुघ्न तथा जाम्बवान आदि ~~पात्रों- वीर हैं~~ पात्रों में मिलती है। इनके अतिरिक्त तपस्वी, ऋषि, मुनि एवं साधक भी इसी भावना की भक्ति के भक्त थे। यद्यपि इनमें ज्ञानी भक्तों की संख्या अधिक थी। महर्षि अगस्त ने स्पष्ट यह घोषणा की थी कि - सेवक सेव्य एवाद जिन पावा ।

तिनहिं भजन तजि आन न भावा।।१

हनुमान की अनन्य सेवकाई को भी सेवक सेव्य भाव की भक्ति का उच्च रूप माना गया है। कवि ने इसी माध्यम से स्पष्ट अपना विचार व्यक्त करते हुये कहा है -

दोहा - सेवकाई प्रिय राम कहं, नहि जप तप व्रत नेमा ।

दास भाव भज राम कहं, चहै जो आपनि छेम ।।२

करुणा पुंज, कारण रहित दयालु प्रभु श्रीराम की भक्त वत्सलता, दैन्य प्रियता तथा शरणागत वत्सलता पर विश्वास करता हुआ सेवक सेव्य भाव की भक्ति का भक्त यम नियम का पालन करता हुआ, सदाचरण को अपने जीवन में चरितार्थ कर शुद्ध अन्त:करण से साधु वृत्ति वाला होकर समस्त साधनों के एकमेव फल के रूप में अनपायिनी भक्ति की ही याचना करता है।

१- रघुवंश दीपक- अरण्यकाण्ड दोहा ४६ के बाद की चौपाई

२- वही - सुन्दरकाण्ड - दोहा ६६

हनुमान, शबरी, शरभंग १, भरत, लक्ष्मण तथा महर्षि अगस्त २, सुतीक्ष्ण आदि सभी भक्तों ने ऐसी ही भक्ति की कामना की थी। शबरी को प्रभु श्रीराम ने ऋद्धि, सिद्धि, सुगति तथा स्वर्ग अपवर्ग सभी कुछ देने को कहा किन्तु उसने अनपायिनी भक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य की कामना नहीं की। इसी प्रकार भरत ने भी सब कुछ ठुकरा कर यही कहा था कि -

* जहाँ न सम्पत्ति स्वर्ग सुख, नहिं अपवर्ग अनूप ।
तब पद पद्म पराग रति, चकहौं मानुकुल भूप ।। ३

भरत की माता कैकेयी ने ४ तथा स्वयं श्री राम की जननी कौशल्या ने ५ भी अन्त में ज्ञानोदय होते ही उनकी परमाराध्य के रूप में वन्दना करते हुये अनपायनी भक्ति की ही याचना की थी। मुक्ति की कामना को भी त्याग कर केवल प्रभु के चरणों में अविरल भक्ति तथा अमल अनुराग की कामना ही भक्ति का चरम साध्य है। सन्तराम जी ने महर्षि अगस्त्य के मुख से इसीलिए कहलाया था कि -

सगुण उपासक मुक्ति न मांगा। तजि तव चरण अमल अनुरागा।।६

ज्ञान विराग से युक्त संसार से त्राण दिलाने वाली सेवक सेव्य भाव की भक्ति के लिये ही श्री राम ने स्वयं अपने मुख से लक्ष्मण को जो उपाय बतलाये थे उनमें यम नियमों का पालन, इन्द्रिय निग्रह एवं परोपकार में आसक्ति, आस्तिकता आदि उदात्त गुणों से सम्पन्न होकर भगवान की

१- रघुवंश दीपक - अरण्यकाण्ड दोहा ३७ के बाद की चौपाई ।
२- वही - अरण्यकाण्ड दोहा ४७ से पूर्व की चौपाई ।
३- वही - अयोध्याकाण्ड दोहा २७३ ।
४- वही - अयोध्याकाण्ड - दोहा २६० (१) ।
५- वही - उत्तरकाण्ड दोहा १३७
६- वही - अरण्यकाण्ड दोहा ४७ के पूर्व की चौपाई ।

सेवा करने का आदेश दिया था। १ भक्ति शास्त्रों में भक्ति के दो भेद किये गये हैं उनमें प्रथम को वैधी जिसे गौणी तथा द्वितीय को रागानुगा भक्ति कहते हैं। गौणी भक्ति को साधन रूप में स्वीकार किया गया है तथा रागानुगा भक्ति की प्राप्ति इसका चरम लक्ष्य है। भक्ति की उच्चतम् भाव भूमि तक पहुंचने के लिये भक्त को गौणी भक्ति के साधनों को स्वीकार कतिपय विधि विधानों का पालन करना पड़ता है। इसी लिये इसे वैधी भक्ति भी कहते हैं। श्रीमद् भागवत में श्रवणादिक नौ प्रकार की गौणी भक्ति का विधान किया गया है। भक्ति के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये `रघुवंश दीपक` में लक्ष्मण को इस भक्ति के लक्षण बतलाते हुये इसके साधक भक्त की विशेष स्थितियों का वर्णन श्रीराम ने इस प्रकार किया था -

`मम पद पदुम सनेह बढ़ावै। प्रेम सहित सब नेम बहावै ।।
लोक लाज कुल कानि न थोरी। नाचै गावै त्रन सम तोरी ।।
कहुं नाचत कहुं गावत ठाढ़े। पुलक शरीर नैन जल बाढ़े ।।
दोहा - नाते नेह सनेह तजि, देह गेह विसराम ।
मम गुण गावै नेम तजि प्रेम प्रवाह वहाय ।।
हसंत कबहुं रोवत मन मारे। प्रेम अधीर शरीर विसारै ।।
करि मद पान यथा मत वारे। शिथिल शरीर न चीर संभारे।।
कहुं बैठत कहुं उठत सम्हारी। टेरत मोहि पुकारि पुकारी ।।
भजनानन्द मग नित रहईं। नहिं अपवर्ग स्वर्ग सुख चहईं ।। २

भक्ति की इस स्थिति को प्राप्त करने के लिये ही साधन रूप में नवधा भक्ति का विधान भी `रघुवंश दीपक` में मिलता है। ३ लक्ष्मण को ही उपदेश देते हुये श्रीराम ने अपनी भक्ति को प्राप्त करने के सहज उपाय के रूप में नवधा भक्ति का विस्तार सहित वर्णन किया था, चारों प्रकार की मुक्तियां जिसकी दासी होती हैं। ४ स्पष्टत: कवि ने लक्ष्मण

१- रघुवंश दीपक - अरण्यकाण्ड दोहा ५२ केबाद की चौपाईं।
२- रघुवंश दीपक - उत्तरकाण्ड -दोहा १२६ के पूर्व व बाद की चौपाइयां।
३- वही - उत्तरकाण्ड दोहा १२१ से १२५ के मध्य की चौपाइयां।
४- नारद सूत्र ।।४ ।।

-राम सम्वाद के रूप में एक जिज्ञासु भक्त का अपने गुरु से भक्ति विषयक विभिन्न अवधारणाओं को उद्घाटित करने का प्रयास ही था। नवधा भक्ति की साधना से भक्त के हृदय में भगवान के प्रति उत्तरोत्तर परम अनुरक्ति की उपलब्धि होती है और वह निरन्तर प्रभु के प्रेम में लीन रहकर अनायास ही समस्त आसक्तियों से युक्त हो अनन्यता की उच्च भूमि प्राप्त कर लेता है जो भक्ति का चरम साध्य 'रागानुगा भक्ति है।

सहजराम जी ने भक्ति को 'अमृत स्वरूपा' ही माना है जिसकी उपलब्धि होते ही मानव सिद्ध, अमर तथा पूर्ण तृप्त हो जाता है। १ निष्कामता तथा अनन्यता इसके मुख्य तत्व हैं। देवर्षि नारद ने कहा है कि अनन्य भक्त न किसी वस्तु में आसक्त होता है और न उसे विषय भोगों की आसक्ति का उत्साह रहता है। २ साथ ही वह अपने प्रेम की पराकाष्ठा में स्थित होकर उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध हो जाता है तथा आत्माराम बन जाता है। ३ उसका स्पष्ट चित्र कवि ने भक्ति के उपर्युक्त उदाहरण में प्रस्तुत किया है। भक्ति की जिन आसक्तियों का उल्लेख नारद सूत्र में मिलता है ४, 'रघुवंश दीपक' में उन्हें वैसा ही न ग्रहण कर श्रीमद्भागवत में वर्णित नवधा भक्ति के रूप में लिया गया है। किन्तु भक्ति को उन्होंने नारद की भांति शांति रूपा परमानन्द दायिनी माना है। ५ भक्ति में अनन्य भावना तथा एकान्त निष्ठा के प्रतीक के रूप में सहजराम जी ने चातक का स्वाति के प्रति प्रेम को आदर्श माना है। राम के प्रति भरत की भक्ति को उन्होंने इसी रूप में चित्रित किया है। भरत के मुख से निकले हुये निम्नांकित शब्द यहां उद्घृत करना अप्रासंगिक न होगा -

चातक नेम प्रेम अति सांचा। स्वाति वारि बिन अमिय न यांचा।।
\- - - - - - - -
यदपि देवसर जल मल हरई। हमरे कुल की टेक न टरई।।

१- नारद सूत्र ।। ।।

२- नारद सूत्र ।।६ ।।

३- वही - ।।५ ।।

४- वही - ।।८२।। ग्यारह आसक्तियों का उल्लेख -
गुण माहात्म्यासक्ति रूपासक्ति -------

५- नारद सूत्र ।।६०।। शान्ति रूपा त् परमानन्द रूपाच्च ----

प्रेम पियूष पपीहा पिवई। वर्षा वारि न बिनु जल जिवई।।
पिउ पिउ रटत घटत नहिं बानी।पिवै न सरित सिन्धु सर पानी।

इसी प्रकार सीता की राम के प्रति प्रेम भी चातक के प्रेम के रूप में ही वर्णित किया गया है ।

'रघुवंश दीपक' में भक्ति में ही निरन्तर लवलीन रहने वाले, आत्म विस्मृत ऐसे अनेक भक्तों का उल्लेख मिलता है जिन्होंने प्रभु श्री राम की शरण तथा अनपायनी भक्ति के अतिरिक्त संसार के किसी भी आकर्षण को स्वीकार नहीं किया। शरभंग ऋषि, सुतीक्ष्ण,शबरी , प्रकाश मुनि उसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। इन भक्तों ने संसार रूपी घोर गहन वन से पार जाने के लिये प्रभु श्री राम की अनपायनी भक्ति को अकुण्ठित कुठार के रूप में प्राप्त करने की याचना की है। २ अज्ञान के अंधकार तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, तृष्णा, अहंकार आदि विषय जन्तुओं से पूर्ण संसार रूपी घोर वन में भटक भटक कर दुःख पाने वाले प्राणी को केवल प्रभु की अनपायनी भक्ति का ही आधार है, ऐसा विश्वास प्राय: सभी भक्तों का था। इसीलिए सुख प्रदान करने वाली भव-भय हरनि अविरल भक्ति की याचना रघुवंश दीपक में स्तोत्र की गई है । ३ ~~अविरल-भक्ति-की-मनमनन~~ स्वयं प्रभु श्री राम ने भी लक्ष्मण कोउपदेश देते हुये यही स्पष्ट घोषणा की थी कि -

सुर नर नाग असुर जग जेते । भव अटवी भटके सब तेते ।
भक्ति हमारी अकुंठ कुठारी। सो संसृति बन काटन हारी।।४

भारतीय धर्मसाधना में ज्ञान, कर्म,उपासना(भक्ति) तीन प्रमुख मार्ग स्वीकार किये गये हैं । रघुवंश दीपक में इन तीनों ही मार्गों की अलग अलग चर्चा करके

१- रघुवंश दीपक - अयोध्या काण्ड-दोहा २१३ तथा २१४ के मध्य की चौपाई

२-अ-वही - उत्तरकाण्ड- दोहा ११६ तथा १२० के मध्य की चौपाइयां ।
ब-रघुवंश दीपक- अरण्यकाण्ड दोहा ४२ के ऊपर का छन्द ।

३- वही - अरण्य काण्ड- दोहा ४४ के पूर्व का छन्द

४- वही - उत्तरकाण्ड- दोहा १२० तथा १२१ के मध्य की चौपाइयां ।

भी सहजराम जी ने उपासना (भक्ति) में ज्ञान और कर्म को समन्वित कर उन्हें भक्ति का सहायक स्वीकार किया है। श्रद्धा और विश्वास को धारण कर मानव जब बंधन-मोक्ष के रहस्य को समझने का प्रयास करता हुआ भगवान के अविरल प्रेम तथा अहैतुकी कृपा का पात्र बन जाता है तो उसकी जीवन साधना पूर्ण हो जाती है और वह जीवन मुक्त हो परमानन्द की प्राप्ति कर लेता है। कर्म पाश से मुक्त होने तथा कामादि समस्त शत्रुओं के विनाश के लिये सहजराम जी ने ज्ञान रूपी खड्ग की धारा से निसृत भगवद्भक्ति को ही एकमेव अवलम्ब माना है। १ उनके अनुसार भक्ति रहित ज्ञान उसी प्रकार शुष्क, स्वाद रहित तथा नीरस है जिस प्रकार रोगी को दिया गया पथ्य । २ ज्ञान की उष्मा तथा ताप से हृदय की रागात्मक वृत्तियां शुष्क हो जाती है किन्तु वे विषयादि की आर्द्रता से पुन: हरी भी हो सकती है जबकि भक्ति की रसमयता से सिक्त हृदय निरन्तर सरस रहता है। अत: उसपर विषयों की आर्द्रता का प्रभाव नहिं पड़ता अस्तु ज्ञान की अपेक्षा भक्ति अधिक स्वाभाविक तथा सरल है । ज्ञान का मार्ग कठिन तथा उसकी प्राप्ति दुर्लभ है जबकि भक्ति का मार्ग अत्यन्त सरल एवं उसकी प्राप्ति सर्व सुलभ है। रघुवंश दीपक में भगवान के नाम का निरन्तर जप तथा सत्-संग में अहर्निशि निमग्न रहकर निर्द्वन्द्वता की स्थिति प्राप्त करना भी भक्ति का आवश्यक अंग माना गया है।मन की चंचलता को नष्ट करने के लिये योगियों ने समाधि, प्राणायाम् आदि की व्यवस्था की है किन्तु भक्ति में मन की चंचलता को नष्ट करने के लिये भगवान के चरणों में निरन्तर लीन रहने की आवश्यकता पर बल दिया गया है जो अधिक

१- रघुवंश दीपक - उत्तरकाण्ड दोहा ११६ ।

२- वही - उत्तरकाण्ड दोहा ११६ के पूर्व की चौपाई -

" केवल ज्ञान भक्ति बिनु भाई। लागत रुखन मूल कुताई ।।

सरल तथा स्वाभाविक है। आलम्बन ही न मन टिकता नहीं। किन्तु भगवान के सगुण रूप को आलम्बन रूप में स्वीकार कर लेते ही मन उसके रूप सौन्दर्य तथा अन्य गुणों पर रीझता, संतुष्ट होता हुआ निरन्तरलीन होता है जिससे उसकी चंचलता नष्ट हो जाती है। `रघुवंश दीपक` में इसीलिये जिस आलम्बन को भक्ति के लिये चुना गया है वह सुन्दरता की राशि तथा सर्व गुण सम्पन्न था।

वस्तुत: रघुवंश दीपक में सहजराम जी ने श्रवण, मनन, शम, दम आदि को साधन रूप में स्वीकार कर उसके द्वारा उत्पन्न होने वाले ज्ञानोदय को अविरल भक्ति का निष्पादक माना है। अखण्ड, भजन, साधु, कृपा सत्संग तथा इन सबसे अधिक भगवत्कृपा एवं प्रसन्न भाव को भक्ति के सर्वोत्कृष्ट साधन के रूप में स्वीकार किया है। इसी प्रकार भगवतोन्मुख होने के लिये ज्ञान वैराग्य को भी आवश्यक माना है। वासनाओं से पंकिल हृदय में भगवच्चरणों का अनुराग उत्पन्न करने के लिये ही ज्ञान वैराग्य की आवश्यकता मानी गई है। १ महर्षि शाण्डिल्य ने भक्ति की प्राप्ति के लिये भगवद्विषयणी बुद्धि को आवश्यक मानते हुये श्रवण, मनन, निदिध्यासन के अनुष्ठान भी उतने ही महत्व पूर्ण माने हैं। उन्होंने ज्ञान को अंतरंग और ज्ञानेतर विधान को वहिरंग साधन माना है। देवर्षि नारद के अनुसार विषय त्याग एवं संग त्याग दोनों ही भक्ति के साधन हैं। ३ महाभारत कार ने विषयों के साथ ही विषयासक्ति का त्याग भी, भक्ति में अनिवार्य माना है। ४

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह हम कह सकते हैं कि सेवक-सेव्य भाव की भक्ति के प्रतिपादन तथा उसकी अन्तिम स्थिति एवं चरमावस्था से संबंधित सभी विचार `रघुवंश दीपक` में वैसे ही हैं जैसे `राम चरित मानस` में। नवधा भक्ति का वर्णन, साधु संग का महात्म्य, सत्संग का लाभ तथा भजन की महत्ता का वही रूप रघुवंश दीपक में प्राप्त होता है जैसा रामचरित मानस में तुलसी की ही भांति सहजराम जी ने सेवक-सेव्य भाव की भक्ति को स्वीकार किया है। सदाचरण, कायिक, मानसिक, वाचिक सभी प्रकार की शुचिता एवं

१- दृष्टव्य - रघुवंश दीपक - अरण्यकाण्ड दोहा ४६ से ५३ के मध्य का पूरा प्रसंग जो लक्ष्मण की जिज्ञासा को शान्त करने के लिए श्रीराम ने कहा था।

२- शाण्डिल्य सूत्र ।। २७, २८ ।।

३- नारद सूत्र, ३५ `तत्तु विषय त्यागात् संग त्यागाच्च।`

क्रमश:

ज्ञान वैराग्य मूलक सभी साधनों को भक्ति के सहायक तत्व के रूप में तुलसी की ही भांति सहजराम जी ने स्वीकार किये थे। इसी प्रकार भक्ति में धर्म की जिस रसात्मक अनुभूति की चर्चा पूर्ववर्ती पृष्ठों में की गई है उससे संबंधित उन सभी धर्म भूमियों को जिन्हें गोस्वामी तुलसीदास जी ने भक्ति की साधना में आवश्यक माना था, हमारे आलोच्य कवि की कृति ` रघुवंश दीपक ` में भी देखा जा सकता है। कवि ने पूर्ण धर्म जिसका संबंध अखिल विश्व की स्थिति रक्षा से है पूर्णपुरुष राम में ही देखा है। ` रघुवंश दीपक ` में जिस सर्वांग पूर्ण आदर्श से युक्त राम का चरित्रगान हुआ है उसमें गृह धर्म या कुल धर्म, समाज धर्म, लोक धर्म तथा विश्व धर्म अथवा पूर्ण धर्म की पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। कवि ने ब्रह्म के इसी सत्स्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति के रूप में इस धर्म साधना की रसात्मक अनुभूति को सेवक - सेव्य भाव की भक्ति के रूप में स्वीकार किया है। `रघुवंश दीपक ` में श्रीराम के अतिरिक्त भरत, लक्ष्मण, हनूमान तथा विभीषण ऐसे पात्र हैं जिनके चरित्र धर्म की ऐसी विभिन्न भूमियों पर आधारित हैं जो ऊंची , नीची , सम-विषय सभी परिस्थितियों में सीमित धर्म की अपेक्षा व्यापक धर्म की साधना के प्रति सतत प्रयत्न शील है। वस्तुत: कवि ने भक्ति के आलम्बन के रूप में जिसे स्वीकार किया था उसके महच्चरित्र के गान को ही उसने अपनी भक्ति पद्धति की सफलता मानी है तथा उसके प्रति परम अनुराग को ही उसका चरम साध्य माना है। कवि का यह प्रयास भी अपने प्रेरक गोस्वामी तुलसीदास की एतद्विषयक धारणाओं से प्रेरित जान पड़ता है ।

२- रघुवंश दीपक में माधुर्य भावना अथवा रसिक भावना की भक्ति

हिन्दी राम काव्य धारा में रसिक भावना की भक्ति का प्रारम्भ सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में महात्मा अग्रदास उपनाम ` अग्र अली ` के द्वारा माना जाता है। इसके पश्चात् नाभादास उपनाम ` नाभा अली ` ने इसे ` मध्यम मार्ग ` के नाम से प्रचलित कर श्रीराम सीता के नित्य विहार को माधुर्य रति

४- महाभारत - शान्ति पर्व - १६२। १७ ।

के रूप में वर्णित किया।इसी धारा के एक अन्य उपासक रसिक अली जी ने इसे वैधी तथा रागानुगा के उभय कूलों को स्पर्श करने वाली भक्ति धारा कहा है। १ माधुर्य चित्रण में भी इस धारा के कवियों ने राम की चारित्रिक मर्यादा की रक्षा की है तथा उनके एक पत्नीव्रत को कहीं भी कलंकित नहीं होने दिया। सीतातत्व की दार्शनिक व्याख्या द्वारा रसिक भक्तों ने सखी भाव से उपासना करते हुये परम्परा से राम के एक पत्नीव्रत,पारिवारिक एवं सामाजिक मर्यादा के पालक,लोकरक्षक अनुपम सौन्दर्य के आदर्श रूप को कलंकित नहीं होने दिया।

भारतीय धर्मसाधना में ब्रह्म को लीलानुरक्त माना गया है। उसके दिव्य लोक की कल्पना दिव्य लीला भूमि के रूप में की गई है। राम भक्त साकेत लोक को अपने आराध्य श्रीराम की नित्य लीला भूमि मानते हैं और उसमें प्रवेश अपनी साधना का चरम लक्ष्य मानते हैं। इस लीला धाम के दो रूप हैं। प्रथम साकेत जिसे दिव्य लोक कहते हैं तथा द्वितीय अयोध्या जिसे भूलोक कहते हैं। साकेत राम की भोगस्थली और अयोध्या लीला स्थली है।इन्हें ही क्रमश: परमब्रह्म राम की माधुर्य और ऐश्वर्य लीलाभूमि भी कहते हैं। रसिक भावना के भक्तों के अनुसार साकेत लोक जीव ब्रह्म मय प्रकृति मण्डल से परे मन वाणी से अगोचर ज्योति स्वरूप सनातन गो लोक के मध्य में स्थित है । २

साकेत के सात आवरण हैं और वह गोलोक का अन्त:पुर है। परात्पर ब्रह्म श्रीराम अपनी आह्लादिनी शक्ति सीता जी तथा अन्य परिकरों सहित वहीं निवास करते हैं। ३ साकेत के मध्य भाग में ही कनक भवन नामक एक दिव्य प्रसाद है वहीं सीता-राम की विहार स्थली है। साकेत के चारों दिशाओं में चार द्वारहैं। इन चारों द्वारों के निकट ही चार लीला भूमियां हैं। पूर्व में मिथिला अथवा अयोध्या पश्चिम में मथुरा अथवा वृन्दावन उत्तर में महा वैकुण्ठ तथा दक्षिण में चित्रकूट- नामक लीला भूमियां स्थित हैं। साकेत के पश्चिमोत्तर दिशा में सरयू नदी बहती है। साकेत में ही कनक भवन के मध्य में सोमवट की छाया के नीचे रत्न सिंहासन पर सर्व शक्तियों से नमस्कृत सीता को धारण किये प्रेम विह्वल मुद्रा में श्रीराम का निवास है। इस अन्त:पुर में महापुरुष श्रीराम का निवास है। इस अन्त:पुर में महापुरुष श्री राम अनन्त सखियों से युक्त सीता जी के साथ नित्य रास लीला में मग्न रहते हैं। ४ सभी सखियां राम की आह्लादिनी

१- वैधी अरु रागानुगा, उभय कूल सो जान।करि निवास जे मज्जहिं,तिनकर सुकृत पुरान। (रसिक अली जी) ।
२- दृष्टव्य राम नव रत्न सार संग्रह - पृष्ठ ३०
३- दृष्टव्य राम नवरत्न सार संग्रह -पृष्ठ ३१
४- वही - पृष्ठ -४०

शक्ति सीता की ही अंश मानी गई हैं। अत: राम से उनका संबंध सीता के माध्यम से ही होता है और वे इसीलिये तत्सुखी की अधिकारिणी हैं। सीता की भावरूप में अंशी मानने वाली सखियों के साथ राम की क्रीड़ा सीता के साथ दाम्पत्य केलि से भिन्न नहीं है। अत: सखी भाव की उपासना को ही रसिक भावना की भक्ति का चरम लक्ष्य माना गया है। इस साधना में भी दास्य भावना का ही रूप स्वीकार किया गया है। भक्त सीता जी की सखियों के रूप में ही इस दिव्य रास लीला का भोक्ता बनकर तृप्त हो जाता है।

राम और सीता का संबंध पुरुष और प्रकृति का है। रसिक भक्तों ने साकेत लीला को प्रकृति के साथ पुरुष की नित्य क्रीड़ा का प्रति रूप माना है। पारकर जीवात्मा रूप में सीता जी का अंश है जो ब्रह्म की परा तथा आह्लादिनी शक्ति है। जीव को प्रभु का सान्निध्य प्राप्त करने के लिये सीता रूप में ही विलीन होना पड़ता है। किन्तु रूप में स्थित ब्रह्म तत्त्व अथवा राम मूल प्रकृति स्वरूपा सीता की ज्योति से सदैव आवृत रहता है अत: उसके समीप पहुँचने के लिये यह आवश्यक है कि इस प्रकृति तत्त्व से जीव अपना तादात्म्य स्थापित कर चिन्मय प्रकृति का रूप धारण कर ले और नित्य सुख का भोग करे। १

'रसिक भावना' की भक्ति धारा के इसी सन्दर्भ में जब हम सहजराम जी की इष्टाभिलाषक भावना का अनुशीलन करते हैं तो हमें यह स्पष्ट दिखाई देता है कि रघुवंश दीपक में कवि ने यथावसर कतिपय प्रसंगों की रचना करके राम-सीता की रास-क्रीड़ा का र संक्षिप्त किन्तु रसमय वर्णन किया है जिसमें राम की चारित्रिक मर्यादा की पूर्ण रक्षा करउन्हें एक पत्नी व्रत केआदर्श से च्युत नहीं किया। स्वयं को कवि ने सीता की एक सखी 'सहजा सखी '२ के रूप में प्रस्तुत कर तत्सुख का अनुभव किया है।

१- डा० भगवतीप्रसाद सिंह - राम भक्ति में रसिक भावना- पृष्ठ

२-रघुवंश दीपक बालकाण्ड दोहा ३५३ केबाद की चौपाई -

'सहजादिक सेवत सियदासी। चन्द्र कला विमला कमलासी ।।

इसी प्रकार साकेत लोक की स्थिति का वर्णन कवि ने ' रसिक भावना ' की मान्यताओं केआधार पर इस प्रकार किया है -

तेहिते योजन कोटि पचासा। जहं गो लोक शोक श्रम नासा।।
अवध पुरी प्राची दिशि सोहत।पश्चिम मधुरा अतिमन मोहत।।१

सोमवट की स्थिति तथा उसकी छाया के नीचे रत्न सिंहासन पर अपनी आह्लादिनी शक्ति सीता सहित श्रीराम, चन्द्र कला, विमलादिक सखियों के साथ रास क्रीड़ा का वर्णन भी कवि ने उसी मान्यता के आधार पर इस प्रकारकिया है -

अवध पुरी के दक्षिण आशा।चित्रकूट गिरि परम प्रकाशा ।।
मणिमय शिखर मनोहर द्रोनी ।विलसत सीताराम अयोनी ।।
उत्तर दिशि सरयू सरि सोहत। मणि सोपान विलोकि विमोहत।।
वन प्रमोद पूरब दिशि पावन। मध्य सोमवट छांह सुहावन ।।
दोहा - रतन सिंहासन सोह अति। सिय समेत सुख कन्द ।
करत विनय ब्रह्मादि सुर, शिव सनकादि मुनिन्द।।२

राम जी ने सीता को श्री, भू, लीला ३ की अधिष्ठात्री तथा इच्छा, ज्ञान , क्रिया इन तीन शक्तियों से सम्बन्धित मूल प्रकृति के रूप में परम पुरुष राम की नित्य भोग्या माना है। ४

राम और सीता के विलास के चित्रण में कवि ने इस बात का निरन्तर ध्यान रखा है कि उनकी चारित्रिक दिव्यता में किसी प्रकार की आंच न आने पावे । इसी प्रकार रास-क्रीड़ा में अन्य सखियों के साथ

१- रघुवंश दीपक - अयोध्याकाण्ड दोहा ६। १-२
२- वही अयोध्या काण्ड दोहा ६।७-१० तथा दोहा १०
३- वही अयोध्या काण्ड, दोहा १०।४
४- वही- बालकाण्ड दोहा ३५५। १-४

की जाने वाली लीला में भी कवि ने राम के एक पत्नी व्रत के आदर्श की संरक्षता की है। १ कवि ने सीता की सखियों तथा गोप सुतादि सुर मुनि कन्याओं को इस रास क्रीड़ा में भाग लेते हुये दिखाया है जिनकी अभिलाषाओं की तृप्ति कवि ने राम के सर्व व्यापक तत्व की व्याख्या करते हुये इस प्रकार की है -

अनाशक्त सबके उर बसहू ।
संतत तुम न विषय रस रसहू ।।
रवि प्रतिबिम्ब अंबु की नाईं ।
दीखत पृथक न पृथक गोसाईं ।।२

इस प्रकार हम देखते हैं कि रघुवंश दीपक में कवि ने 'रसिक भावना की भक्ति के सिद्धान्तानुसार ही राम सीता के विहार तथा रास क्रीड़ा को चित्रित किया है जो लौकिक श्रृंगार की अश्लीलता से पंकिल नहीं हो पाया तथा संक्षिप्त होने के कारण मूल चेतना को बाधित नहीं करता केवल उसकी वैयक्तिक रुचि की झलक मात्र प्रस्तुत करता है ।

१- रघुवंश दीपक - बालकाण्ड - दोहा -३५५

सुनि सिय वचन विवेक मय ,एक नारि व्रत राम ।
कृपा कटाक्ष विलोकि है, पूरण कीन्ही काम ।।

२- वही - बालकाण्ड - दोहा ३५२।६,१०

: रघुवंश दीपक में कवि के दार्शनिक विचार :

भारत की आध्यात्मिक विचार धाराओं मध्यकाल से कुछ पूर्व तक विविध दर्शनों के द्वारा व्यक्त हो रही थी, उनमें कालान्तर में उपनिषद, बादरायण कृत ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद् गीता के विचारों को विशेष स्थान मिला। भारतीय दर्शन में इन्हें 'प्रस्थानत्रयी' की संज्ञा दी गई है। आध्यात्मिक चिन्तन के क्षेत्र में अपूर्व क्रान्ति करने वाले जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य ने इसी को आधार बनाकर अपने दार्शनिक मतवाद को प्रतिष्ठित किया जिसे मायावाद के नाम से पुकारा गया। उनके इस मायावाद के विरोध में जो अनेक दार्शनिक मतवाद कालान्तर में प्रतिष्ठित हुए उन सभी ने अपनी व्याख्याओं का आधार उपर्युक्त प्रस्थान त्रयी को ही बनाया। यह सर्व विदित तथ्य है कि शंकराचार्य के परवर्ती कालीन मतवाद साधना के क्षेत्र में सगुण भक्ति मार्गी थे। सहजराम जी भी सगुण भक्ति मार्गी भक्त कवि थे। यद्यपि उनके भक्ति विषयक संस्कार किसी निश्चित दार्शनिक मतवाद से पूर्णत: सम्बद्ध नहीं किये जा सकते किन्तु जैसा कि हम पूर्व ही इस तथ्य की ओर संकेत कर चुके हैं कि वे इस क्षेत्र में भी गोस्वामी तुलसीदास जी से प्रभावित थे, उनका भक्ति मार्ग भी उन्हीं की भक्त पद्धति से अधिकांश प्रभावित था। इसीलिये उसमें भी तुलसी की भांति ही व्यापकता, तथा व्यवहारिकता का पक्ष अधिक उजागर हुआ है। ब्रह्म, जीव, जगत तथा जीवन के चरम लक्ष्य से संबंधित अधिकांश विचार जिस आध्यात्मिक विचारधारा की परम्परा से प्रेरित या प्रभावित कहे जा सकते हैं वह विशिष्टाद्वैत दर्शन द्वारा निर्मित है साथ ही अन्य मतवादों के एतद् - संबंधी विचार भी उनमें यत्र तत्र मिलते हैं। अत: पूर्व पीठिका के रूप में केवल विशिष्टाद्वैत की संक्षिप्त चर्चा के उपरान्त 'रघुवंश दीपक' में प्रस्तुत कवि की विचार धारा का अनुशीलन किया जा रहा है जिसमें यथा स्थान अन्य मतवादों से साम्य रखने वाले विचारों की ओर भी संकेत करना उचित होगा।

: विशिष्टाद्वैत वाद का संक्षिप्त परिचय :

इस सम्प्रदाय की आस्थानुसार इसके आदि प्रवर्तक 'श्री' या लक्ष्मी'

होने के कारण उन्हीं के आधार पर यह ` श्री वैष्णव` सम्प्रदाय के नाम से भी जाना जाता है किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से चतुर्थ आचार्य यामुनाचार्य को ही इस सम्प्रदाय की नींव डालने तथा विशिष्टाद्वैत मत को सर्व प्रथम प्रकाशित करने वाला माना जाता है। १ श्रीरंगम में रहकर प्राचीन भागवत, पांचरात्र व सात्वत् धर्म के सुधरे हुए रूप को ही विशिष्टाद्वैत मत में विवेचित कर उन्होंने अपने ग्रन्थ `सिद्धित्रय ` की रचना की और उसके द्वारा शंकराचार्य जी के मतवाद का खण्डन किया। २ इस प्रकार विशिष्टाद्वैत वाद का प्रचार तो यामुनाचार्य जी के द्वारा प्रारम्भ हो गया था किन्तु `प्रस्थान त्रयी ` के आधार पर उसकी वेदान्त परक तथा सर्व मान्य व्याख्या का कार्य उनके पौत्र तथा उत्तराधिकारी श्री रामानुजाचार्य के द्वारा सम्पन्न हुआ।

:विशिष्टाद्वैतवाद में जीव,जगत तथा ब्रह्म विषयक विचार:

रामानुजाचार्य ने विभिन्न ग्रन्थों की रचना कर अपने मत की पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करते हुये `पदार्थ त्रयम ` के नाम से ईश्वर जीवात्मा तथा जगत की स्वतंत्र एवं सत्य सत्ता की स्थापना की। डा० गौरीशंकर हीराचन्द औझा केशब्दों में `विशिष्टाद्वैत वादियोंका कहना है कि ` जीवात्मा और जगत ब्रह्म से भिन्न होते हुये भी वास्तव में भिन्न नहीं है, सिद्धान्त में एक ही हैं परन्तु कार्य रूप में एक दूसरे से भिन्न और विशिष्ट गुणों से युक्त हैं।`३ रामानुजाचार्य की पदार्थ मीमांसा कोस्पष्ट करते हुए प्रो० बल्देव उपाध्याय ने कहा है कि उनकी पदार्थ मीमांसानुसार ईश्वरचित

१- परशुराम चतुर्वेदी - वैष्णव धर्म द्वितीय संस्करण अध्याय ७ पृष्ठ ७८ शीर्षक ` श्री सम्प्रदाय ` ।

२- वही - पृष्ठ ७६ शीर्षक वही ।

३- डा० गौरीशंकर हीराचन्द औझा - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति -द्वितीय संस्करण अध्याय १ - धर्म, दर्शन पृष्ठ १८ शीर्षक रामानुजाचार्य और विशिष्टाद्वैत ।

और अचित को आश्रित करता है तथा कर्म में प्रवृत्त करता है। इसप्रकार प्रधान होने के कारण वह नियामक होकर विशेष्य कहलाता है तथा जीव, जगत नियम्य होने के कारण विशेषण है। विशेषण पृथक न होकर विशेष्य के साथ सदैव सम्बद्ध रहते हैं । अत: ब्रह्म अद्वैत रूप है क्योंकि अन्तर्भूत चिदचित् की अंगी से पृथक सत्ता नहीं होती । १ जीव और ब्रह्म को विशिष्ट सम्बन्ध द्वारा अभिन्न प्रतिपादित करने तथा विशिष्ट प्रकार से अद्वैतता के प्रतिपादन केकारण हीइसे विशिष्ट द्वैत कहा गया है।

रामानुजाचार्य द्वारा निर्दिष्ट चित, अचित तथा ईश्वर में से चित से तात्पर्य भोक्ता जीवन से, अचित से तात्पर्य भोग्य जगत से तथा ईश्वर से तात्पर्य सर्वान्तर्यामी से है। जीव और जगत वस्तुत: नित्य तथा स्वतंत्र पदार्थ है तथापि वे ईश्वर के आधीन रहते हैं क्योंकि अन्तर्यामी रूप से वह दोनों के भीतर विराजमान रहता है। इसलिये चित तथा अचित् ब्रह्म के शरीर या प्रकार माने जाते हैं । ईश्वर प्राकृत गुण रहित, निखिल हेय - प्रत्यनीक, कल्याण गुण-गुणाकार, अनन्त ज्ञानान्द स्वरूप, ज्ञानशक्त्यादि कल्याण गुणविभूषित तथा सकल जगत सृष्टि -स्थिति संहार करती है ।"२ इस मत के अनुसार जीव और जगत का प्रयोजन लीला है तथा संहार की दशामें भी उससे विरति नहींहोती। ३ विशिष्टा द्वैत मत की उल्लेखनीय विशेषता ईश्वर के सगुण रूप का प्रतिपादन है। शंकराचार्य जी ने ब्रह्म को सजाती, विजातीय तथा स्वगत भेदों से रहित माना था । ४ किन्तु रामानुज ने ब्रह्म के स्वगत भेद को स्वीकार करके उसकोसगुण माना। ५

१- प्रो० बल्देव उपाध्याय-भारतीय दर्शन पृष्ठ ४६२ - शीर्षक रामानुजाचार्य की पदार्थ मीमांसा ।

२- प्रो० बल्देव उपाध्याय - भारतीय दर्शन - पृष्ठ ४६०,६१

३- वही - द्वितीय संस्करण १४ परिच्छेद -वैष्णव दर्शन पृष्ठ ४६२ शीर्षक रामानुज की पदार्थ मीमांसा - ईश्वर ।

४- वही - १२ परिच्छेद अद्वैत वेदान्त दर्शन पृष्ठ ४२०

५- विश्वम्भर उपाध्याय- हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि- संस्करण २०१२- पृष्ठ १४७ शीर्षक विशिष्टाद्वैत वाद और रामानुज ।

विशिष्टाद्वैतवाद का चरम साध्य:

रामानुजाचार्य के मतानुसार आत्मा का बंधन कर्म द्वारा होता है। शरीर में रहने के कारण आत्मा शरीर व इन्द्रियों द्वारा बद्ध हो जाता है। १ इस बंधन से मुक्ति या मोक्ष पाना उनके दृष्टिकोण से चरम साध्य है।

साधना पद्धति:

उपर्युक्त मुक्ति साधना के लिये विशिष्टाद्वैत मत के अन्तर्गत प्रपत्ति अर्थात् एक मात्र ईश्वर को एकान्त निष्ठा पूर्वक पूर्ण आत्म समर्पण करदेना सेवक सेव्य भाव का संबंध अपना कर उन्हीं पर पूर्णतया आश्रित रहना साधक के लिये आवश्यक माना गया है। इसमतवाद में सर्वाधिक विशेषता यह है कि इसमें भक्ति को महत्त्व देकर भी ज्ञान तथा कर्म के महत्त्व को स्वीकार किया गया है। २ उनके अनुसार शास्त्र विहित कर्मों तथा यज्ञ,दान ,व्रत,तीर्थयात्रा से आत्मा की शुद्धि होती है। ३ इसप्रकार विशिष्टाद्वैत वाद में ब्रह्म कीसगुण उपासना का प्रतिपादन हुआ है तथा ज्ञान,कर्म से युक्त भक्ति को साधन मानकर मोक्ष को चरम साध्य माना है।

रघुवंश दीपक में सहजराम जी केदार्शनिक विचार

पूर्व पीठिका के रूप में हमने जिस दार्शनिक मतवाद का संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया है जब उसके सन्दर्भ में 'रघुवंश दीपक' में व्यंजित कवि सहजराम जी केदार्शनिक विचारों को लक्ष्य करने का प्रयास करते हैं तो हमें यह स्पष्ट दिखाई देता है कि ब्रह्म, जीव, जगत तथा मायादि संबंधी जोविचार 'रघुवंश दीपक' में यत्र तत्र प्रसंगवश निरूपित हुये हैं उनमेंविशिष्टाद्वैत मतवाद का प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता है साथ ही अन्य दार्शनिक मतवादों से संबंधित विचार भी उसमें कहींकहीं अपनी झलक दिखा जाते हैं। अस्तु कवि की

१- विश्वम्भर उपाध्याय- हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि- पृष्ठ १५२ शीर्षक मोक्ष का स्वरूप ।

२- प्रो०बलदेव उपाध्याय भारतीय दर्शन द्वितीय संस्करण पृष्ठ ४६७

३- डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा-मध्यकालीन भारतीयसंस्कृति - द्वितीय सं पृष्ठ - १८

एतद्विषयक मान्यताओं को हम निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत देखने का प्रयास करेंगे -

१- ब्रह्म विषयक विचार तथा ईश्वरत्व

२- जीव सबंधी विचार

३- जगत सबंधी विचार

४- माया सबंधी विचार

५- साधन मार्ग तथा जीवन का लक्ष्य

१- रघुवंश दीपक में ब्रह्म विषयक विचार तथा ईश्वरतत्व

सहजराम जी ने ब्रह्म को सच्चिदानन्दघन ,निर्गुण,विकार रहित १, सर्व व्यापक,विरज, अज, अद्वैतानन्द दायक, आदि, मध्यान्त रहित, सृजन पालन तथा संहारकर्ता, २ 'अखिल ब्रह्माण्ड नायक, सर्वज्ञ, मायाधीश,अनीह गुणराशि, अमल ,अनूप ,अलख, अरूप ,अविनाशी ३ कहा है। पुराण ,आगम निगम सभी जिसे नेति नेति कहकर वर्णन करते हैं तथा जो महदादिक तत्वों को नियंता, निरामय कैवल्य दाता परात्पर ब्रह्म है उसी ने राम रूप में पृथ्वी पर अपने भक्तों को आनन्द देने के लिये सगुण रूप धारण किया है। जो सबका प्रकाशक, अनादि मायाधीश है तथा जो सच्चिदानन्द घन निर्गुण विकार रहित परात्पर ब्रह्म है वही रघुवंश द मणि, रघुवंश भूषण अवधपति राम है। ४ मत्स्यादिक अवतारों को धारण करने वाले परात्पर ब्रह्म में और राम में कोई भेद नहीं है। ५ जिस प्रकार मणिमाला की प्रत्येक मणि में सूत्र

१-रघुवंश दीपक बालकाण्ड दोहा-१७६
' ब्रह्म सच्चिदानन्द घन, निर्गुण रहित विकार ।'

२- वही ,अरण्यकाण्ड,दोहा ४४ के पूर्व का छन्द-
' तुम ब्रह्म व्यापक,विरज अज अद्वैत आनन्द दायको।
तव आदि मध्य न अन्त श्रीभगवंत सन्त सहायका।। आदि

३- वही -बालकाण्ड - दोहा २७ से पूर्व की चौपाइयां -
जो अनीह निर्गुन गुनराशी। अमल अनूप रूप अविनाशी ।।
अलख अनामय अमल अनूपा। नित्य निरंजन नाम न रूपा ।।
तन मन वचन अगोचर जानी।निर्गुन ब्रह्म कहैं मुनि ज्ञानी ।।

४- रघुवंश दीपक बालकाण्ड- दोहा २६-२७ के मध्य की चौपाइयां -
दशरथ सुवन राम वैदेही। जनकसुता सुर वन्दन जेही ।
सो मम इष्टदेव श्रीराम। पुरुषों पुरातन पूरनकामा।।

५- वही बालकाण्ड-दोहा३२ - मत्स्यादिक अवतार,अवतारी रघुवंश मणि।'

व्याप्त है उसी प्रकार सहजराम जी ने ब्रह्म (राम) को सम्पूर्ण संसार में व्याप्त माना है। १ ब्रह्म सर्वत्र उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकारकाष्ठ में अग्नि।२

'सहजराम जी' ने निर्गुण ब्रह्म (राम) तथा सगुण रूप में अवतार ग्रहण करने वाले राम में पूर्णतया अभेद दृष्टि रखी है।उनके मत में अवतीर्ण राम और ब्रह्म राम दोनो एक ही हैं। इनमें भेद बुद्धि रखने वालो की उन्होने निन्दा ही नहीं अपितु यहाँ तक भर्त्सना की है कि उनकी जिह्वा को यदि वश चले तो सूजे से छेदने कोभी कहा है। वे कहते हैं -

'राम मनुज बोलेसि असि बानी। सुकृत समूह होहिं हित हानी ।।
जो बिसाय सुनु शैल तनूजा। छेदिय जीह अकुंठित सूजा ।।
कहँ राम कहँ मनुज अभागे । प्रयाश्चित तेहि वेद न बागे ।।३

इसप्रकार ब्रह्म को हीसहजराम जी ने माया जीव,प्रकृति,गुण,काल कर्म तथा महत्तत्त्वादि का अधिष्ठाता एवं नियामक माना है जो प्रकट रूप में अन्य कोई नहीं अपितु राम ही थे। ४ उपर्युक्त विवेचित रघुवंश दीपक में कवि के ब्रह्म विषयक विचारों तथा अवधारणाओं पर दृष्टिपात करने से यह तथ्य स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि वह शंकराचार्य के अद्वैतवाद, रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत, निम्बार्क के द्वैताद्वैत तथा मध्वाचार्य के द्वैतवाद के प्रतिपादित ब्रह्म के समान ही स्वीकार किया गया है। अद्वैत मत में जिसप्रकार ब्रह्म को सत्य, अद्वितीय शुद्ध ,विज्ञान घन, निर्मल,शान्त आदि अन्तर्रहित,अक्रिय और सदैव आनन्द रूपमाना गया है तथा उसे समस्त मायिक भेदो से रहित नित्य सुख रूप कला रहित प्रमाणादि का अविषय ,अरूप,अव्यक्त,अनाम और अक्षाम तेजवाला जो स्वयंप्रकाशित होता है, स्वीकार किया गया है ५ 'रघुवंश दीपक' में भी हम ब्रह्म के उसी रूप को उपरिनिर्दिष्ट उदाहरणों में देख

१- रघुवंश दीपक -किष्किन्धा काण्ड दोहा ६२ केबाद की चौपाई -

२- वही -अरण्यकाण्ड-दोहा ४६ केपूर्व की चौपाई -
ब्रह्म दासगत अनल अकर्ता। तुम रघुनाथ प्रकट तुम हर्ता ।।

३- वही- बालकाण्ड दोहा २६ से पूर्व की चौपाइयां।

४- आद्य शंकराचार्य- विवेक चूड़ामणि ब्रह्म निरूपण-
'अत: परं ब्रह्म सदद्वितीयं ,विशुद्ध विज्ञान घनंनिरंजनम् ।।
प्रशान्त माद्यंत विहीन मक्रियं । निरन्तरानन्द रसस्वरूपम् ।। आदि

सकते हैं । विशिष्टाद्वैत में ब्रह्म विषयक अवधारणा को हम पूर्व पीठिका के रूप में देख चुके हैं जिसका साम्य रघुवंश दीपक मे निरूपित ब्रह्म मेंमिलता है उसीप्रकार निम्बार्क मत के प्रतिपादित ब्रह्म में तथा आलोच्य कृति में प्रतिपादित ब्रह्म में कोई भिन्नता नहीं दिखाई देती । माध्व मत में परमात्मा अनन्त गुण पूर्ण है औरउसका प्रत्येक गुण असीम है।वह सब प्रकार से पूर्ण है,नित्य है। वह अप्राकृत है तथा उसके अंग चिदानन्द के हैं।परमात्मा का प्रत्येक रूप उसके सर्व गुणों से पूर्ण होता । १ यह मत सगुण ब्रह्म के अवतारों को स्वीकार करता है जो एक होकर भी अनेक रूप धारण करते हैं स्वयं पूर्ण है तथा उनमें और भगवान के नित्य रूप में कोई भेद नहीं है। २ अस्तु माध्व मत में प्रतिपादित ब्रह्म का 'रघुवंश दीपक' में प्रतिपादित ब्रह्म से पूर्ण साम्य है। इस प्रकार ब्रह्म सम्बन्धी विचारों में कवि कोहम किसी भी विशेष दार्शनिक मतवाद से प्रतिबद्ध नहीं पाते ।

२- रघुवंश दीपक में जीव सबंधी विचार

सहजराम जी ने जीव को ईश्वर का अंश माना है जो अपने पन को भूल जाने के कारण ही ससार में भटकता है। ईश्वर और जीव के सबंध में उन्होने कहा है -

'ईश्वर अंश जीव श्रुति भाखा। जैसे विटप विटप की शाखा ।।
गिरि कन्दर कर करज विभेदा। भिन्न न भिन्न बखानत बेदा।।३

उनका मत था कि ईश्वर कभी भी विकार युक्त नहीं होता जीव ही विकार युक्त होकर भ्रमित होता रहता है। ४ जीव अपनेपन को भूलकर उसी प्रकार भटकता है जिसप्रकार सिंह अपना सिंहत्व भूलकर भेड़ो के साथ चरने लगता है। ५

१- डा० दीनदयालगुप्त -अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय प्रथम संस्करण प्रथमअध्याय पृष्ठ भूमि पृष्ठ-५१

२- विश्वम्भर उपाध्याय-हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पुष्ठभूमि संस्करण २०१२ पृष्ठ १७१ शीर्षक द्वैतवाद औरमध्वाचार्य ईश्वर ।

३- रघुवंश दीपक उत्तरकाण्ड दोहा ११७।३-४

४- वही दोहा ११७।१

५- वही- दोहा ११५।७-८

श्रीराम के द्वारा लक्ष्मण को दिये गये जीव-जगत तथा मायादि के प्रसंग में स्वयं राम के मुख से जीव और ईश्वर के सबंध में जो शब्द रघुवंश दीपक में मिलते हैं वे इसप्रकार हैं -

जीव हमार अंश अविनाशी। निर्मल निराकार सुखराशी ।।१

जीव के निर्मल, निर्विकार, विशुद्ध स्वरूप में विकार क्यों उत्पन्न होता है इसपर सहजराम जी के विचार भी इसप्रकार हैं -

' मोर तोर में त्वै वृथा। परी प्रकृति की छांह ।।

ताते मन भटको फिरै, अटकि रहो जग मांह।।२

ईश्वर और जीव के भेद को स्पष्ट करते हुये सहजराम जी ने जो तर्क पूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं वे इसप्रकार हैं -

मैं तो अस जानत जगदीशा।जीव सो जीव ईश सोई ईशा ।।

छांछ ते दधि होय नहिं जैसे। जीव ते होय सीव नहीं तैसे।।३

- - - - - - - -

कोउ मुनि कह मायावश भयउ।ताते ईश जीव ह्वै गयउ।।

दीनवन्धु सम्भव तनु सोईं। ईश कबहुं मायावश होईं ।।४

बालि वध पर विलाप करती हुई तारा को श्रीराम ने जो उपदेश दिया है उसमें जीव को देहेन्द्रिय ,मन प्राण से अलग नित्य औरचैतन्य माना है जो मैं ,तै मोर, तोर के भ्रमपाश में ज्ञान के प्रकाश से रहित होने के कारण बंधा रहता है। सम्पूर्ण प्रसंग इसप्रकार है -

वादि विलाप करहुत कित तारा। कोतुमकोपति आहि तुम्हारा।।

नहिं कोउ वनिता नहिं कोउ पीउ।देह अनित्य नित्य यह जीउ।।

१- रघुवंश दीपक - उत्तरकाण्ड दोहा ११७ से पूर्व की चौपाई ।

२- वही - उत्तरकाण्ड दोहा ११७

३- वही - अरण्यकाण्ड दोहा ४४ तथा ४५ के मध्य की चौपाइयां

४- वही - अरण्यकाण्ड दोहा ४५ के बाद की चौपाइयां ।

मै, तै, मोर ,तोर भ्रम पाशा। बंधेउ जीव बिनु ज्ञान प्रकाशा।।

दुख सुख योग जीव तेहि कहई । महि तै रहित परम पद लहई।।१

इसप्रकार सहजराम जी ने जीव को परतंत्र ,मोहपाश मेंबंधने वाला,माया के बंधन में पड़ने वाला विवश किन्तु ईश्वर का अंश, चैतन्य,नित्य, अविनाशी तथा निर्मल, निराकार सुखराशि माना है। उनका मत था कि जो विषय विलाश से विवश है वह जीव है किन्तु जो विषय से विरक्त है २ वही सींव है अर्थात् ईश्वर है ।

उपर्युक्त विवेचन में 'रघुवंश दीपक 'में जीव संबंधी जो विचार दिखाई देते हैं उन्हें हम विशिष्टाद्वैत वाद तथा निम्बार्क के द्वैताद्वैत अथवा भेदाभेद से अधिक पुष्ट पाते हैं । विशिष्टाद्वैत में जीवसंबंधी विचारों का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं यहां द्वैताद्वैत में प्रतिपादित जीवसंबंधी विचारों का उल्लेख कर हम अपनी बात को अधिक स्पष्ट करना उचित समझते हैं ।इसके अनुसार जब जीव शरीर केबंधन में बंधा रहता है तब वह ईश्वर से भिन्न होता है उस समय ब्रह्म व्यापक,सर्वज्ञ महत्परिणाम वाला होता है और जीव व्याप्य अल्पज्ञ तथा अनुपरिणाम वाला होता है यही भिन्नता है।किन्तु ईश्वर और जीवअभिन्न भी हैं। वृक्ष से पत्र उत्पन्न होकर भिन्न भीहै औरअभिन्न भी होता है। दीपक से प्रभा भिन्न भीहै औरअभिन्न भी। ३

निम्बार्क मत में चित ,अचित तथा ईश्वर विषयक त्रिविध पदार्थों की मान्यता रामानुज की ही भांति है केवल इनके परस्पर संबंध निरूपण में भेद है। ४

१- रघुवंश दीपक - किष्किन्धाकाण्ड दोहा २७ तथा २८ के मध्य की चौपाइयां

२- रघुवंश दीपक अरण्यकाण्ड दोहा ५४ के पूर्व की चौपाई -
' विषय विलास विवश सो जीऊ।विषय विरक्त सत्य सो सींऊ।।

३- विश्वम्भर उपाध्याय-हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि संस्करण २०१२ द्वैता द्वैतवाद और निम्बार्काचार्य शीर्षक ईश्वर पृष्ठ १८५

४- प्रो० बलदेवउपाध्याय - भारतीय दर्शन द्वितीय संस्करण वैष्णव दर्शन पृष्ठ ५१५ - शीर्षक निम्बार्क पदार्थ मीमांसा ।

३- रघुवंश दीपक में जगत सम्बन्धी विचार

जगत के संबंध में सहजराम जी ने स्पष्ट कहा है कि -

तात जगत जानहु सब सपना। नहि धन धाम तनय तन अपना।।१

जगत मृग जल के समान असत्य है यह बात कवि ने स्थान स्थान पर दुहराई है -

रविकर भव जल पिवै पियासा। तथा वृथा जग झूठ तमाशा।।२

- - - - - - -

सुत पितु मातु भवन परिवारा। मृगजल मगन होइ संसारा।।३

इसी प्रकार यह संसार वैसा ही झूठा तथा भ्रमपूर्ण है जिसप्रकार अंधेरे में रस्सी का सर्प प्रतीत होना। यद्यपि वह वास्तव में सर्प नहीं है। ४ श्रीराम के मुख से लक्ष्मण को उपदेश दिलवाते समय कवि ने यही कहा है कि -

सोरठा - जानहु स्वप्न समान, यह संसार विचारि करि।

सोवत मर्म भुलान, जागि विलोकहु झूठ सब ।।५

उन्होंने ईश्वर और जगत के संबंध में यही स्वीकार किया था कि जिसप्रकार मिट्टी से घड़े का निर्माण होता है और सोने से आभूषण तथा सूत्र से वस्त्र ६ उसी प्रकार ब्रह्म में जगत तथा जगत में ब्रह्म व्याप्त है। ७ मोर+तोर, मैं, त्वै, के वृथा भ्रम को छोड़कर इस जगत को भगवद्रूप मानने पर ही भेद दृष्टि नष्ट हो जाती है और जीव मोहपाश से मुक्त होकर अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। सहजराम जी ने जगत को मिथ्या कहकर भी मानव शरीर को मोक्ष का साधन माना है। अस्तु जगत को मिथ्या कहने में उनका आशय यही प्रतीत होता है कि जगत के विषय, विलास तथा मोह पाशादि से जीवको सजग रहना चाहिए

१- रघुवंश दीपक उत्तरकाण्ड दोहा ११५ व ११६ के मध्य की चौपाइयां।

२- वही-उत्तरकाण्ड दोहा ११५ के बाद की चौपाई।

३- वही-किष्किन्धाकाण्ड दोहा २८ तथा २६ के मध्य की चौपाई

४- मैर न रजु भुजंग केकाहे। जियै न शशि प्रतिबिम्बहिं चाहे।
तैसेइ तात झूठससारा। मैरे जियै बिनु किये बिचारा।।
द्रष्टव्य-रघुवंश दीपक उत्तरकाण्ड दोहा ११५ के बाद की चौपाइयां

५- रघुवंश दीपक - अयोध्याकाण्ड दोहा ७१

६- रघुवंश दीपक उत्तरकाण्ड दोहा ११८ के पूर्व की चौपाइयां
मृण में कुम्भ कनक में गहना। वसन सूत्रमें दूसर कहना।
जो मैं जग देखत नाहीं। व्यापकता महं भेद कराहीं।। क्रमश:...

क्योंकि जगत के आकर्षण दृश्य रूप में स्थायी नहीं हैं।

४- रघुवंश दीपक में माया संबंधी विचार

सहजराम जी ने माया को ब्रह्म की प्रकृति के रूप में माना है जो अहंकार मूलक है। मैं, मेरा, तै और तेरा का भाव ही माया की मूल प्रेरणा है। ३ माया ही वह शक्ति है जो मनमाने स्वरूप धारण कर जीव को भ्रमित करती रहती है। वह जगन्मोहिनी भी है तथा सर्पिणी के समान महान् विषैली भी। ४ माया स्वयं सत्य नहीं है और न उसमें कोई शक्ति ही है वरन् वह ब्रह्म की सत्यता पर ही सत्य सी प्रतीत होती है और उसी की शक्ति से शक्ति प्राप्त कर विभिन्न आकर्षण, नाम, रूप आदि भेदों की सृष्टि करती है। ५ नाना प्रकार के छल, छद्म और मोहादि के रूप में वह समस्त प्राणियों को भ्रमित करती रहती है। मिथ्याभिमान, दम्भ, क्रोध, काम, ईर्ष्या, द्वेष तथा नाना प्रकार की चिन्ताओं और त्रिविध एषणाओं के प्रपंच में फंसाने का कार्य यही माया करती है। ६ माया ही ज्ञान को नष्ट कर अज्ञान रूपी अंधकार की सृष्टि कर जीव को पथभ्रष्ट कर देती है। सहजराम जी ने राक्षसों के आभिचारिक कृत्यों अथवा अतिचारों तथा छल छद्मों को भी माया ही कहकर संबोधित किया है। ७ इसप्रकार माया ब्रह्म और जीव के मध्य आवरण बनकर सत्य को दृष्टि से ओझल करने का कार्य करती है।

जगत और माया से संबंधित जिन विचारों को हमने रघुवंश दीपक में उपर्युक्त विवेचन के आधारपर लक्ष्य किया है उससे यह तथ्य स्पष्ट होजाता है

पूर्व पृष्ठ---- १- रघुवंश दीपक-उत्तरकाण्ड दोहा ११८ तथा उससे पूर्व की चौपाई -
मो में जग जग में मोहिं देखा। नाम विभेद न भेद विशेषा।
तथा - सो कोविद सो ज्ञाननिधि, उत्तम नीच मध्यस्त।
मो मे देखय जगत सब, अग जग जीव समस्त।।

२- रघुवंश दीपक-उत्तरकाण्ड-दोहा ११७
मोर, तोर, मैं ले वधा, परी प्रकृति की छांह।
ताते मन भटको फिरै, अटकि रही जग मांह।।

३- वही -वही

४- वही - उत्तरकाण्ड दोहा ३० व ३१ के मध्य का छन्द

५- वही - सदासत्य सत्यात्मा सत्यधीरी। मृषा सत्यसो सत्यता ते तुम्हारी।।

६- वही दोहा ११६ तथा १२१ के मध्य का प्रसंग।

७- सूर्पनखा मेघनाद, कुंभकरण, रावणादि राक्षसों ने युद्ध में छल करने के लिए

कि इस सबंध में हमारा आलोच्य कवि शंकराचार्य जी के मायावाद से ही प्रभावित था। अद्वैतवाद में जगत को परात्मा से अभिन्न माना गया है। उसके अनुसार परमात्मा से पृथक जगत है ही नहीं उसकी पृथक प्रतीति रज्जु में सर्प की प्रतीत के समान मिथ्या है। १ इसी प्रकार शंकराचार्य जी ने माया को अव्यक्त के नाम वाली त्रिगुणात्मिका अनादि अविद्या परमेश्वर की पराशक्ति कहा है। जिसमें यह सम्पूर्ण जगत उत्पन्न हुआ है और जिसके कार्य से ही बुद्धिमान पुरुष उसका अनुमान करते हैं। २ रघुवंश दीपक में स्थान/पर संसार को मिथ्या तथा माया को भ्रम उत्पन्न करने वाली अत्यन्त अद्भुत कहा है इसे हम उपरिनिर्दिष्ट विभिन्न उदाहरणों में देख चुके हैं। अत: जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं सहजराम जी के जगत तथा माया सबंधी विचारों में शांकर अद्वैतवाद का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

५- साधन मार्ग तथा जीवन का चरम लक्ष्य

' रघुवंश दीपक' में जिस साधान मार्ग का निरूपण किया गया है वह न तो शांकरअद्वैतवाद के आधार पर है और न अन्य किसी दार्शनिक मतवाद का ही पूर्णत: समर्थन करता है। वह उनका स्वयं का अनुभूत सिद्ध साधना मार्ग था जिसके अन्तर्गत समस्त वैधी भक्ति तथा श्रवण मनन, निदिध्यासन आदि साधनों से पोषित ज्ञानादि को भी पूर्ण मान्यता प्रदान की गई थी। योगियों के परमतत्त्व की पूर्ण प्रतिष्ठा होते हुए भी भगवत्कृपा को इससाधन मार्ग का सर्वस्व स्वीकार

१- आद्य शंकराचार्य विवेक चूड़ामणि ब्रह्म औरजगत विचार -

' अत: पृथङ्नास्ति जगत्परात्मन:,पृथक्प्रतीतिस्तु मृषागुणाहि वत् ।।
आरोपित स्यास्ति किमर्थवत्ता,धिष्ठानमा भाति तथा भ्रमेण।।

२- वही - माया निरूपण -

' अव्यक्त नाम्नी परमेश शक्ति,रनाद्य विद्या त्रिगुणात्मिकापरा ।
कार्यानुमेया सुधियैव माया, यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते ।।

किया गया है। सेवक सैव्य भावना से युक्त अनन्य स्थिति को प्राप्त कर प्रपन्न भाव से अहर्निशि परात्पर ब्रह्म के सगुण रूप भगवान राम की अनपायनी भक्ति की प्राप्ति ही इस साधन मार्ग की चरम उपलब्धि मानी गई है। ज्ञान वैराग्य से युक्त ससांर से पार लगाने वाली राम के चरणों की भक्ति ही इस साधनमार्ग के प्रत्येक साधक की चिर अभिलाषा थी।१ सहजराम जी के साधन मार्ग में सदाचरण इन्द्रिय निग्रह, वेदाध्ययन, विलासिता का त्याग, भगवान के प्रति पूर्ण आत्म समर्पण, सत्संग , भजन नाम कीर्तन तथा साधु स्वभाव की स्थिति ,प्रपन्न भावना शास्त्र तथा गुरु के प्रति सतत् श्रद्धा भगवान के चरणों के अविरल अमल अनुराग के लिये आवश्यक माने गये हैं। उपास्य औरउपासक दोनों की पृथक सत्ता इस साधन मार्ग में सैव्य सेवक भाव के रूपमेंपूर्णत: सुरक्षित मानी गई है तथा सगुण उपासना पर ही बल दिया गया है। २ सहजराम जी स्वयं एक साधु पुरुष राम के रसिक भावना के भक्त थे जिसमें कैंकर्य युक्त दास्य भावना से ही तत्सुख की प्राप्ति की कल्पना की गई थी। इस साधन मार्ग में मुक्ति को ठुकराकर जन्म - जन्मान्तर तक भगवान की अविरल अनपायनी भक्ति की ही याचना की जाती है तथा ज्ञानादि सभी साधन भक्ति के आधीन रहते हैं ।

इसी अध्याय के पूर्ववर्ती पृष्ठों में 'रघुवंश दीपक ' में व्यंजित भक्ति भावना पर विचार करते समय सहजराम जी की भक्ति पद्धति का विस्तृत परिचय प्राप्त किया जा चुका है अत: साधन मार्ग सबंधी उपर्युक्त विवेचन को संक्षेप में ही लक्ष्य कर हम अपनी बात समाप्त करना चाहेंगें क्योंकि भक्ति की प्राप्ति के लिये सहजरामजी द्वारा स्वीकृत साधन मार्ग वस्तुत: उनके दार्शनिक विचारों

१- रघुवंश दीपक अरण्य काण्ड दोहा ४६-
(अ) भक्ति आपनी भवतारिनि, ज्ञान विराग समेत ।

(ब) वही - अरण्यकाण्ड दोहा १०६ के बाद की चौपाई -
जपतप यज्ञ योग व्रत नैमा। जन्म अनेक एक फल प्रेमा ।।

२- रघुवंश दीपक अरण्यकाण्ड दोहा ४६ तथा उसके बाद की चौपाइयां -
जोजानिजाने सोइ,परब्रह्म पर धाम।हम जानै दशरथ सुवन,भुवन विभूषणराम

तातैरहौ द्वैत मत धारे। हम सेवक तुम स्वामि हमारे।
सेवक सेव्य भाव जिनपावा। तिनहि भजन तजि आन न भावा।
करौ न काहू कर मतखण्डित। समुझि विचार चलैं पथ पण्डित।
राम तुम्हारि भक्ति पटरानी। अनुगामिनि पवर्गी सयानी ।।

से पूर्ण साधन पथ से अभिन्न था ।

निष्कर्ष :

ब्रह्म, जीव, जगत तथा माया संबंधी विचारों को देखते हुये तथा साधन मार्ग एवम् जीवन के चरम लक्ष्य पर दृष्टिपात करते हुये हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि रघुवंश दीपक में किसी भी दार्शनिक मतवाद का पूर्णतः अनुसरण नहीं किया गया। शांकर अद्वैतवाद, रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत वाद, निम्बार्क के द्वैताद्वैत तथा माध्व के द्वैतवाद के अन्तर्गत प्रतिपादित ब्रह्म, जीव, जगत मायादि पदार्थों की मीमांसा को एवं अपने भक्ति को पुष्ट करने तथा राम को- सर्वोपरि परमाराध्य के रूप में प्रतिष्ठित कर उनकी भक्ति के प्रचार तथा प्रसार के लिये सहजराम जी ने अंशतः स्वीकार किया है। फिर भी उसपर विशिष्टाद्वैत का प्रभाव अधिकांश रूप में लक्षित होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी की भांति सहजराम जी ने भी विशिष्टाद्वैत से अन्य मतवादों की अपेक्षा अधिक निकटता दिखाई है। अपने ढंग से दार्शनिक मतवादों की व्याख्या कर उन्होंने प्रत्येक से उस तत्त्व को स्वीकार किया है जो उनके भक्ति मार्ग के लिये सहायक सिद्ध हुआ है। अस्तु हमें यह कहने में संकोच नहीं होता कि सहजरामजी मूलतः भक्त थे दार्शनिक नहीं। उन्हें किसी दार्शनिक मतवाद के साथ पूर्णतः सम्बद्ध करना उचित न होगा। तुलसी की भांति ही वे श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ के पथिक थे जिसमें मुक्ति को ठुकराकर भक्ति की उपलब्धि तथा उसकी सर्वकालीन स्थिति को ही जीवन का परम साध्य स्वीकार किया गया है। प्रस्तुत प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में 'रघुवंश दीपक' की रचना के स्रोत पर विचार करते समय हम यह लक्ष्य कर चुके हैं कि ब्रह्म जीव जगत तथा मायादि दार्शनिक विचारों में सहजरामजी अध्यात्म रामायण तथा प्रकारान्तर से रामचरित मानस से प्रभावित थे। इसी प्रकार वैभक्ति संबंधी अवधारणाओं में भी इन्हीं दोनों कृतियों से प्रभावित दिखाई देते हैं किन्तु वे 'रसिक भावना' के रामभक्त होने के कारण रसिक सम्प्रदाय के दार्शनिक तत्वज्ञान से भी प्रभावित थे अतः उसकी झलक भी उनके ग्रन्थ रघुवंश दीपक में स्पष्ट दिखाई देती है। समग्रतः हम यह स्पष्टरूप से कह सकते हैं कि सहजराम जी मूलतः भक्त थे दार्शनिक नहीं ।